84.

निश्चय

जैन भवन

वर्ष ६ अंक १० : फरवरी १९८३

बनारसी साड़ी
इण्डियन सिल्क हाउस
कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram: PEARLMOON Telephone : 22-4110 22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office :

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ६ : अंक १०

फरवरी १९८३

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

बीकानेर की मथेरन चित्र शैली २९३

ललितांग देव ३०२

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ३११

अर्द्धकथानक ३१६

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ३१९

विद्यावारिधि स्वर्गीय अगरचन्दजी नाहटा

बीकानेर की मथेरन चित्र-शैली

अगरचन्द नाहटा

[जैन वाङ्मय के देदीप्यमान नक्षत्र प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थों के अन्वेषक, संग्राहक एवं उद्धारक अग्रणी साहित्यकार पुरातत्ववेत्ता और इतिहास के अनुसन्धानकर्त्ता श्री अगरचन्दजी नाहटा आज हमारे मध्य नहीं रहे। विगत १२ जनवरी १९८३ को बीकानेर में आपका स्वर्गवास हो गया। यह हमारी एक अपूरणीय क्षति है। देहान्त के कुछ दिन पूर्व ही आपने तित्थयर के लिए एक लेख भेजा था। वह लेख यहाँ प्रकाशित करते हुए उनकी दिवंगत आत्मा को हम अपनी भाव-भीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। —संपादक]

राजस्थान अपने रंग वैविध्य के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ की भूमि चाहे नीरस हो पर लोगों के जीवन में रस की वर्षा निरन्तर होती रहती है। लोगों की वेश-भूषा को देखिये, मनुष्यों की पगड़ी के रंग और स्त्रियों के विविध प्रकार के घाघरे, लहंगे, ओढ़नी, कंचुकी आदि विविध रंगों से सज्जित मिलेंगी। रंगों की अधिकता के कारण यह प्रदेश रंगीला राजस्थान कहा जाता है। स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू जी जब राजस्थान आये तो यहाँ की विविध रंगी बंधेज की पगड़ियों और ओढ़नी आदि को देखकर विमुग्ध-से हो गये। अतः 'रंगीला राजस्थान' इन शब्दों में प्रशंसा की।

राजस्थान में बहुत-सी पुरानी ऐसी कलाएँ हैं जो भारत के दूसरे हिस्से में नहीं मिलतीं। तभी तो यहाँ मन खुश हो जाता है तरह-तरह के रंगों को देखकर। रंग तो सारे भारत में हैं पर राजस्थान के रंग मन को अभिभूत कर देते हैं।

प्राचीन जैन आगमों के अनुसार मूल रंग या वर्ण तो पाँच हैं। पर उनके सम्मिश्रण से अनेकों रंग बनते रहते हैं। मनुष्य की आँखें विविध रूप-रंगों के दर्शन करने को लालायित रहती हैं। अतः रंगों के सम्मिश्रण में सामान्य हेर-फेर करके अनेक रंग-रूपों की सृष्टि की जाती है। जिससे मानव का रूप दर्शन के प्रति आकर्षण बना रहे, बढ़ता चला जाय। राजस्थान में प्राचीन काल से ही अनेक प्रकार के रंग पत्थर आदि के संयोगों से बनते रहे हैं। रंग बनाने की एक विशेष कला यहाँ पनपी। स्वर्गीय श्री रामकरण जी आसोपा ने राजस्थानी भाषा में जो पाठ्यक्रम की पुस्तकें मारवाड़ी पाठमाला के नाम से

बनायी थी उसमें एक पाठ रंगों के सम्बन्ध में भी है। और राजस्थान के नीचे लिखे रंगों के नाम उसमें दिये गये हैं।

"रंग कई तरैरा है। किताकतों कुदरती है नै, किताक वणावटी है जिणां में रातो, धोलो, कालो, पीलो, असमांनी इत्यादि तो कुदरती है; नै बाकी वणावटी, हरियो, नारंगी, बैंगणिया, सोसनी, कासनी, हवासी, गुल अनार, अंबवा आदि घणा रंग हुवै है।

"रातो रंग नैं कसूमल, नै हरिया नैं सूवांपाँखी कवै है, हरियो रंग कालो नै पीलो मिलर हुवै है, रातो नै पीलो मिलर नारंगी, रातो नै कालो मिलर बैंगणिया, असमांनी और गुलाबी मिलर कासनी, असमांनी और रातो मिलर हवासी, इणां सिवाय फेर थोड़ा हलका रंग मिलणा सूं कई तरैरा रंग वणै है यथा किरमची, सरबती, सपतालू, गुलअना र, अंबवा, जमूरदी, जंगाली, पिस्तई, विदामी, कत्थई, गुलाबी, सोसनी, सोनेरी, चंपाई, चंनणिया, बाबी, गंधकी, कपूरी, अंगूरी इत्यादि परंतु अै सगला रंग रातो पीलो और कालो अ तीनूं रंगांरा मिलणा सूं हुया है।"

राजस्थान में अनेक चित्र शैलियां हैं। चित्र बनाने में आकृतियों का अंकन और रंगों के वैविध्य का बड़ा महत्व है। राजस्थान और गुजरात का प्राचीन काल से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। अतः दोनों प्रदेशों की भाषा एक थी। साहित्य की विधाएँ भी समान रूप से विकसित हुयीं। उसी तरह चित्रशैली भी करीब एक जैसी रही है। सोलहवीं शताब्दी तक जो मरू-गुर्जर शैली की चित्रकला प्रचलित रही वह अपभ्रंश चित्रकला के नाम से भी पहचानी जाती है। जेसलमेर के बड़े जैन ज्ञानभंडार में जो काष्ठपट्टिकाएँ एवं ताड़पत्रीय प्रतियाँ चित्रित मिलती हैं उनका प्रारम्भ बारहवीं शताब्दी से होता है। और करीब सोलहवीं शताब्दी तक सामान्य परिवर्तन के साथ वह चित्रशैली यहाँ प्रचलित रही। सोलहवीं शताब्दी से ही राजस्थानी और गुजराती भाषा का अन्तर और अधिक स्पष्ट हो गया। उसी तरह चित्रशैली में भी कुछ अन्तर आया। जो सत्रहवीं शताब्दी में नयी चित्रशैलियों के प्रादुर्भाव का कारण बना। राजस्थान में अनेक तरह की चित्रशैलियाँ पायी जाती हैं। उनमें बीकानेर की ही तीन मुख्य शैलियाँ हैं। पर इसकी जानकारी बहुत ही कम लोगों को है। १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जो मुगल प्रभावित चित्रशैली उस्ता जाति के मुसलमानों द्वारा पनपी वह तो काफी प्रसिद्ध हो गयी पर उसी समय की दूसरी चित्रशैली जो मथेरनों ने विकसित की उसके सम्बन्ध में अभी तक ठीक से विचार नहीं हो पाया है।

१०-१२ वर्ष पहले भारत कलाभवन बनारस से प्रकाशित होने वाली कलानिधि पत्रिका के लिए मैंने एक लेख बीकानेर के मथेरनों की चित्रशैली के सम्बन्ध में कई फोटों के साथ तैयार करके भेजा था। वह आज तक प्रकाशित नहीं हुआ। और उन्हें अनेकों बार तकादा करने पर भी वह सचित्र लेख मुझे वापस भी नहीं मिला। अतः संक्षेप में यहाँ उस चित्रशैली की प्रतियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाल रहा हूँ।

बीकानेर में मथेन या मथेरन जाति का प्रादुर्भाव कैसे हुआ इस सम्बन्ध में एक किंवदन्ती या प्रवाद प्रसिद्ध है कि बीकानेर राज्य के राव कल्याणसिंह के मंत्री संग्रामसिंह बच्छावत के अनुरोध से खरतरगच्छ के आचार्य श्री जिनचन्द्र सूरि जैसलमेर से बीकानेर में १६१२-१३ में आये और अपने स्वर्गीय गुरु जिनमाणिक्यसूरिजी की अंतिम भावना को सफल बनाने के लिए जैन साधुओं के शिथिलाचार निवारण का कार्य हाथ में लिया। कहा जाता है कि वर्त्तमान चिन्तामणि मंदिर जो बीकानेर का सबसे पहला जैन मंदिर भुजिया बाजार में स्थित है, उसके पास में ही जैन उपाश्रय थे। पर उस समय उनमें शिथिलाचारी यति लोग रहते थे। अतः जिनचन्द्रसूरि जी को चौमासा करने के लिए मंत्री संग्रामसिंह ने राँगड़ी स्थित अपनी बड़ी अश्वशाला की जगह दे दी। जिनचन्द्रसूरिजी ने सब यति-जनों को इकट्ठा करके घोषणा कर दी कि वर्त्तमान में जो साध्वाचार के विपरीत बातें की जा रही हैं, उन्हें छोड़ना पड़ेगा और आगम मर्यादा के अनुसार सदाचार का पालन करना पड़ेगा। इस विषय में जो मेरे साथ रहना चाहते हों वे ही साधु कहलायेंगे। साधु के वेश में रहते हुए भी जो साधु के आचारों व नियमों का पालन नहीं कर सकते हैं उनसे अनुरोध है कि वे वेश को बदनाम न करें अर्थात् गृहस्थ बन जायें।

मानव स्वभाव की कमजोरी है कि एक बार जो सुख-सुविधाएँ उसे मिल जाती है उसे छोड़ने को वह तैयार नहीं होता। बीकानेर के तत्कालीन यति-जनों में से बहुत कम व्यक्ति श्री जिनचन्द्रसूरिजी के साथी बने। अधिकांश व्यक्तियों ने माथे पर पगड़ी रखते हुए गृहस्थ वेश को अपना लिया और उनकी जाति मथेन या मथेरन के नाम से प्रसिद्ध हुई। वैसे वे अपने को महात्मा भी कहते हैं। पर १८ वीं शताब्दी की लिखी हुई पचासों हस्तलिखित प्रतियों में उन्होंने अपने लिए मथेन शब्द का व्यवहार किया है। जनता में वे आगे चलकर मथेरन के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

जैन समाज ने उन्हें अपनी आजीविका के लिए कई काम दे दिये जैसे हस्तलिखित प्रतियों की नकल करना, प्रतियों में यथास्थान चित्र बनाना, ओसवाल गोत्रों की वंशावली लिखना। विवाह आदि प्रसंगों में उन महात्माओं की पोशालाओं में सावे थापे जाते थे। मन्दिरों आदि में भी मथेरन लोग चित्र आदि का काम करते थे। धार्मिक उपकरण बनाते थे। आगे चलकर गणेशजी, लक्ष्मीजी आदि के चित्र बनाकर बेचने लगे। इसी तरह ईसरगवरजा की काष्ठ प्रतिमाओं पर रंग करने, बागवाड़ी बनाने आदि का काम करके वे अपनी आजीविका चलाने लगे। उनमें कुछ पढ़े-लिखे विद्वान भी होते थे, जिनके रचित कई ग्रन्थ भी प्राप्त हैं। महाराजा अनूप-सिंह जी ने तो मथेरन जाति के कुछ लोगों को खूब आश्रय दिया। अनूपसिंह जी अधिकांशतया बाहर रहते। शाही आज्ञा से युद्ध आदि करने जाते पर उनका साहित्यानुराग इतना प्रबल था कि प्राचीन पुस्तकें जो भी मूल्य देकर या भेंट रूप में मिल जाती उन्हें तो वैसे संग्रह कर लेते, जो वैसे नहीं मिलती उनकी नकलें अपने आश्रित मथेरनों से करवाते रहते। इसलिए बीकानेर की अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में आज भी उन मथेरनों की लिखी हुयी सैकड़ों हस्तलिखित प्रतियां तथा बहुत-सी चित्रित प्रतियाँ भी पायी जाती हैं।

चूँकि मथेरन जाति का सम्बन्ध जैनों से अधिक रहा, इसलिए उन्होंने सैकड़ों रास चौपाई आदि कथा ग्रन्थों को चित्रित किया है। ऐसी कुछ प्रतियाँ हमारे संग्रह में भी है। तथा पचासों मैंने अन्य संग्रहालयों में भी देखी हैं। उन सबकी चित्रशैली प्रायः एक-सी है। बीकानेर के मथेरन जोधपुर आदि नगरों में भी गये तो वहाँ भी उसी चित्रशैली को अपनाये रखा। जैन और जैनेतर कथाओं और वार्त्ताओं की सैकड़ों सचित्र प्रतियाँ इन मथेरनों द्वारा चित्रित की हुयी पायी जाती हैं। कई सचित्र प्रतियों में चित्रकारों के नाम भी लिखे मिल सकते हैं। हमारे संग्रह की शालिभद्र चौपाई, सासरली बात, ढोला-मारू वार्त्ता की प्रतियों में से प्रथम का विवरण परिशिष्ट में दिया जा रहा है। शालिभद्र चौपाई वीरबल मथेन द्वारा चित्रित और प्रत्येक चित्र के भाव और विषय का निर्देश चित्र के ऊपर में लिखा हुआ है। वे प्रतियाँ लिखने का भी काम करते थे। अतः बहुत-सी प्रतियाँ तो चित्रकार की स्वलिखित व चित्रित की हुई पाई जाती हैं। कुछ प्रतियाँ लिखी हुई तो अन्य की है, केवल चित्र मथेन चित्रकार ने बनाये हैं।

मथेरनों की चित्रशैली का प्रारम्भ कब से हुआ यह निश्चित रूप से तो नहीं कहा जा सकता। १७ वीं शताब्दी में ग्रन्थों की नकल करने का काम

तो मथेरनों ने प्रारम्भ कर दिया था जिसका प्रमाण है अनूप संस्कृत लाइब्रेरी की कुछ प्रतियाँ जो कि १७ वीं सदी की लिखी हुयी है। पर चित्रकारी का काम संभव है १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में शुरू किया गया है। अभी तक मथेरनों की चित्रित प्रतियों में जो सबसे पुरानी मुझे ज्ञात हुयी है वह अनूप संस्कृत लाइब्रेरी की प्रति न० ७९ है। यह प्रति संवत् १७२४ से २७ के बीच पं० आनन्दजी के शिष्य मथेन प्रेमराज की लिखी हुई है। इसके पत्रांक ७ और ८ पर गणेश और कृष्ण के चित्र हैं जो कि संभव है मथेन प्रेमराज द्वारा चित्रित होंगे।

इसके बाद सबसे अधिक प्रतियाँ १९ वीं शताब्दी में चित्रित की हुई है। इस शताब्दी के अनेक मथेन चित्रकारों के नाम मिलतें हैं। बिना नाम वाली मथेन शैली की चित्रित प्रतियों और फुटकर चित्र आदि की संख्या तो हजारों पर है। यहाँ जिन प्रतियों में प्रति-लेखक व चित्रकार का नाम दिया हुआ है उन्हीं की चर्चा की जा रही है क्योंकि उन प्रतियों में लेखन स्थान व संवत् भी दिया हुआ है इसलिए कौन-कौन चित्रकार किस समय में और कहाँ हुए इसकी निश्चित जानकारी मिल जाती है। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी की राजस्थानी विभाग की प्रति न० ११ संवत् १८०८ में लिखित व चित्रित 'किशन-रुकमणी री वेलि नामक ग्रन्थ है जो बीकानेर में मथेन अखेराज के बनाये हुए १३५ चित्रों से समन्वित है। एक ही ग्रन्थ में सर्वाधिक चित्र इसी प्रति में प्राप्त है। इसी ग्रन्थालय की प्रति न० २४ में इसी वेलि वाली एक सचित्र प्रति संवत् १९०८ की लिखी हुयी है पर उसमें चित्रकार का नाम नहीं है।

संवतों और चित्रकार के नामोल्लेख वाली अनूप संस्कृत लाइब्रेरी की राजस्थानी विभाग की प्रतियों में ५ प्रतियाँ और उल्लेखनीय हैं। जिनमें से प्रति न० २४१ रामचरित्र संवत् १८२३ बीकानेर में मथेन रामकिसन लिखित प्रति में रामचन्द्र के राज्याभिषेक का उल्लेख है। इसी प्रति में प्रह्लाद चरित्र संवत् १८३९ बीकानेर में मथेन रामकिसन ने लिखा जिसके प्रायः प्रत्येक पृष्ठ में चित्र अंकित किये हुए हैं। जिनकी कुल संख्या २९ है। प्रति न० १६६ सतीचन्दनारी बात' को मथेन रामकिसन ने संवत् १८३२ में बीकानेर में लिखा। जिसमें अनेकों चित्र हैं। प्रति न० १७० सुदबुद सावलिंगा री बात की ३० पत्रों की प्रति मथेन शिवदान ने संवत् १८४१ में पाली में लिखी। इस प्रति में भी अनेक चित्र हैं।

प्रति न० १७५ में वहलिमारी बात आदि कई बातें संवत् १८६३ बीकानेर में महात्मा कस्तूरचंद की लिखी हुयी है। इसमें भी कई बातें चित्रित हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई प्रतियाँ मथेनों द्वारा चित्रित इस ग्रन्थालय में है। पर उनमें चित्रकार आदि का नाम नहीं मिलता इसलिए यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है।

पीपाड के जयमल ज्ञानभण्डार में मथेन आशाराम की चित्रित कई प्रतियाँ हैं जिनमें हंसराज बछराज की मृगांकलेखा चौपाई, विक्रमादित्य खापरा चोर चौपाई की प्रतियाँ बीकानेर में तैयार की हुयी हमारे देखने में आयी है। मथेन जयकिशन के बीकानेर में लिखित व चित्रित वैदर्भी चौपाई की प्रति भी उसी संग्रह में है।

१८ वीं शताब्दी की चन्दन मलयागिरि चौपाई की दो प्रतियाँ भी मथेन शैली की चित्रित लगती हैं। जिनमें से १ प्रति के चित्र अहमदाबाद के साराभाई नवाब ने आनन्दशंकर ध्रुव अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशित करवा दी है। दूसरी प्रति हमारे शंकरदान नाहटा कलाभवन में संग्रहीत है।

विविध प्रकार के चित्र बनाना मथेन जाति का पेशा हो गया था अतः छोटे-बड़े पचासों व्यक्ति इसी काम में लगे हुए थे। कई नवसिखुओं के बनाये चित्र तो बहुत ही साधारण स्तर के हैं पर कई सधे हुए चित्रकारों के चित्र बहुत ही सुन्दर पाये जाते हैं। हमारे संग्रह की तीनों प्रतियाँ बहुत ही मनोहर चित्रशैली में हैं जिनमें सासरली बात वाली प्रति के चित्र तो इस मथेन शैली के उत्तमोत्तम नमूने हैं। आकृतियों की सुदृढ़ता, रंगों का वैविध्य बहुत ही उल्लेखनीय है। हर एक ग्रन्थ में चित्रों की संख्या भी काफी है। हमारी प्रतियों में ३०-५०-६० है पर अनूप संस्कृत लाइब्रेरी की एक ही प्रति में १३५ तक चित्र हैं।

चित्रित कई प्रतियाँ बड़े गुटके रजिस्टर आकार के हैं, कई पत्राकार हैं। उनमें कई चित्र तो बहुत छोटे-छोटे हैं, कई आधे या पौने पृष्ठ में बड़े साइज के हैं। इन चित्रों में प्रसंगों की विविधता के कारण जीवन के सभी अंश चित्रित हुए हैं। कई चित्रकारों की समझ तो बहुत ही सराहनीय हैं। चित्रित प्रसंग आँखों के सामने आ जाते हैं।

मथेन चित्रकारों ने सचित्र प्रतियों के साथ-साथ सचित्र विज्ञप्ति-पत्र आदि भी तैयार किये जिनमें से बीकानेर के चित्रों वाला एक विज्ञप्ति-पत्र हमें

ज्ञानभण्डार में प्राप्त हुआ है जिसे संवत् १८०१ में मथेन अखैराम जोगीदासोत ने चित्रित किया। यह सचित्र विज्ञप्ति-पत्र बीकानेर से जिन-भक्तिसूरिजी को राधनपुर भेजा गया था। इस तरह के और भी कई सचित्र विज्ञप्ति-पत्र प्राप्त होगें। उनकी खोज आवश्यक है।

मथेनों ने चौबीसियां तो सैकड़ों की संख्या में चित्रित कीं। जिसमें चौबीस तीर्थंकरों के चित्र वर्ण लांछन के अनुसार चित्रित है। प्रायः प्रत्येक जैनी १८ वीं १९ वीं शताब्दी में इन चौबीसी चित्रों को अपने घरों में रखकर नित्य दर्शन वन्दन करता रहा है। इसी तरह अलग-अलग तीर्थंकरों और देव-देवियों के अनेक चित्र मथेन शैली के प्राप्त हैं। जिनमें से कई साधारण व कई बहुत सुन्दर हैं। नवपद सिद्धचक्र जी के गोल आकार वाले गट्टे भी दर्शनार्थ मथेनों ने बहुत से तैयार किये। अर्थात् जैन से सम्बन्धित अधिकाधिक और अनेक विषयों के चित्र मथेन शैली के प्राप्त हैं।

बीकानेर के लालचन्द बोथरा के पास बद्रीनाथ यात्रा का एक सचित्र पट्ट बहुत ही महत्वपूर्ण है। उसमें यद्यपि चित्रकार का नाम व संवत् आदि लिखे हुए नहीं है। पर बीच-बीच के कई चित्र मथेन शैली के ही लगते हैं।

इसी तरह मन्दिर तथा दादाबाड़ियों में मथेनों ने बहुत से भित्ति-चित्र भी बनाये। करीब २५-३० वर्ष पहले उदयरामसर की दादाबाड़ी में जो दादा जिनदत्तसूरि की जीवनी सम्बन्धी भित्ति-चित्र रावतमल जी बोथरा ने बनवाये वे भी बीकानेर के मथेन चित्रकार द्वारा ही चित्रित हैं। अर्थात् आजतक भी मथेनों की चित्रकारी का काम जारी है। इस तरह करीब ३०० वर्षों में मथेनों ने चित्रकला की अपनी जिस शैली का विकास किया वह बहुत ही उल्लेखनीय है। अब वह परम्परा खतम-सी होती जा रही है। अपभ्रंश चित्र शैली के बाद मुगल शैली से अप्रभावित मथेनों की यह चित्रशैली भारतीय चित्रकला में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

[परिशिष्ट]

शालिभद्र चौपाई के चित्रों की सूची

पत्रांक १B महावीर स्वामी बीच की बंगली में और दोनों ओर इन्द्र चवंर ढाल रहे हैं नीचे सिंह लंछन। [परिचय चित्रकार का लिखा हुआ है]

पत्रांक २B चित्र (१) ऊचालो (२) सिंगमो बच्छरवा चारे छैः।

पत्रांक ३A सिंगमो माता से खीर मांगे छैः सिंगमो खीर ठारै छैः।

पत्रांक ३B सिंगमो खीर वेरावे छैः।

पत्रांक ४B (१) सालना क्षेत्र दीठा (२) भद्रासेठानी पुत्र जायो।

पत्रांक ५A (१) गोभद्र सेठ ने पुत्ररी बधाई दीनी सामेरी (२) पालने सूता पुत्र और पास बैठी माता।

पत्रांक ५B विवाह वेदी। ब्राह्मण होम करते हुए, वर-वधू के पीछे काफी स्त्रियाँ अवस्थित हैं।

पत्रांक ६B पेईं तैंतीस सालभद्र ने, आकाश थकी देवता उतारे छैः।

पत्रांक ७A व्यापारी सुभद्रा ने रत्नकंबल देखाव्यो छैः।

पत्रांक ७B २० लाख सोनैया व्यापारीये ने गिन देवे छैः।

पत्रांक ८A राजा श्रेणिक व्यापारियाँ खनै कांबल १ मागें छैः।

पत्रांक ८B राजा भद्रा सेठानी खनै छड़ीदार मूक्यो।

पत्रांक ९A भद्रा खनै अभयकुमार आन सुजरो कियौ।

पत्रांक ९B भद्रा सेठानी राजा श्रेणिक पासै आवे छैः, अभयकुमार साथै छैः।

पत्रांक १०B श्री श्रेणिक महाराज सालभद्र रो घर देखण जावे छैः।

पत्रांक ११A राजा श्रेणिक पैली पहली भूम दूजी भूम देख देख इचरज पावे छैः।

पत्रांक ११B राजा तीजी चौथी भोम आय बैठ्या, म्याली-म्याली देखकर सब अचरज आवे छैः।

पत्रांक १२B सुभद्रा सालभद्र ने तेडा आय छैः, राजा श्रेणिक आपनै घरे आयो छैः।

पत्रांक १३B राजा श्रेणिक पास सालभद्र आये।

पत्रांक १४A राजा स्नान करै छैः।

पत्रांक १४B राजा श्रेणिक मृदङ्गी कढावै छैः भद्रा ऊभी थकी दासी खनै।

पत्रांक १५A राजा श्रेणिक जीमै छैः भद्रा सेठानी पुरसे छैः।

पत्रांक १५B सालभद्र वैराग लेय बैठो रानी बतीस विनवै छैः।

पत्रांक १७B सालभद्र ने माता समझावे छेः अस्तरां ऊचे छेः ।

पत्रांक १८A सालभद्र साधां ने बांदनें आव्या छेः ।

पत्रांक १९B सालभद्र माता पासे अनुमत माग्यां छेः ।

पत्रांक २१B सालभद्र एक-एक अस्तरी छोडे अस्तरी ४॥ छोडी ।

पत्रांक २२B सालिभद्रनी बहन सुभद्रा आपरे भरतार धनेनुं स्नान करावे छेः । सालभद्र आधआयो ।

पत्रांक २४B धन्ने अस्तरी आठ छोडी ।

पत्रांक २५B धन्नो आपरी अस्तरी ने समझावे छेः ।

पत्रांक २६B धन्नो सुभद्रा ने समझाय शालिभद्र न मोल नीचे आयो हेला मारयो ।

पत्रांक २७B सालभद्र माता पासे अनुमत मागें छेः ।

पत्रांक २८B सालिभद्र ने अस्तरियां समझावे छेः ।

पत्रांक २९B सालिभद्र चारित्र्य लेवण ने पधारिये । बहन सुभद्रा अस्तरी ३२ साथे हुयी छेः ।

पत्रांक ३०A श्री भगवंता खनै आज्ञा धन्नो सालभद्र वेहरणरी (१B) पोलियो पैसण दे नहीं सालभद्र धन्नानुं ।

पत्रांक ३२A (१A) सालभद्र पूर्वभवरी माता पासे दही बहरीयों (१B) भगवंता सासों भेद्यो ।

पत्रांक ३२B माता भद्रा सालिभद्र धन्ने ने बांदन आयी भगवंता ने पूछे साध कठे छेः ।

पत्रांक ३३B पर्वत पर ३२ स्त्रियाँ ।

पत्रांक ३४A धन्ने सालभद्र संथारो लियो राजा श्रेणिक अभयकुमार माता अस्त रां ३२ सालभद्र ने वांदें ।

पत्रांक ३५B सालभद्र धन्ना सरगलोक में हिंडोल खाट में बैठा छेः ।

अंतिम पृष्ठ में सालिभद्र महामुनि चौपी सम्पूर्ण के बाद ही प्रशस्ति इस प्रकार है—

संवत् १८२५ वर्ष मिती श्रावण सुद २ शुक्रवारे पुख नखत्र बोधवं । मथेन श्री रामकृष्णजी तत्र पुत्र मथेन जैकिसन ॥ चित्र संजुगते ॥ श्री बीकानेर मध्ये । शुभम् भवतु ॥ कल्याणमस्तु ॥

ललितांग देव

[जैन कथानक]

[पूर्वानुवृत्ति]

उस स्वप्न और जागरण में मैं यह भूल गया कि श्रीप्रभ विमान में एक अन्तहीन वर्त्तमान रहने पर भी वस्तु का परिणमन था। चन्द्र, सूर्य, ऋतु, मास, वर्ष न रहने पर भी कृष्णपक्ष की चन्द्रकला की भाँति मेरा और स्वयंप्रभा का आयुष्य क्षीण हो रहा था। स्वयंप्रभा मुझसे बहुत पहले श्रीप्रभ विमान में उत्पन्न हुई थी। हो सकता है उसका पुण्य और आयुष्य भी स्वल्प था। किन्तु मैं इतना विलास और व्यसन में डूबा हुआ था कि कुछ सोचना तो दूर देखने की दृष्टि भी जैसे खो चुका था। अतः जब सहसा उसका च्यवन काल उपस्थित हुआ मैं जान भी नहीं पाया। उसके कण्ठ की अम्लान कुसुममाला अवश्य ही म्लान हो गयी थी। उसका चिरतारुण्य और कान्ति निश्चय ही निष्प्रभ हो चुकी थी किन्तु मैंने वह सब नहीं देखा। उसे अहरह छाती से लगाए रखने पर भी क्या घट रहा है कुछ नहीं समझ सका। अतः हथेली में ठहरा हुआ जल जिस प्रकार अंगुलियों के छिद्र से निकल जाता है उसी प्रकार वह भी जिस दिन मेरे आश्लेष से गलकर झर गयी मैं यह नहीं समझ पाया कि वह स्वर्ग से विदा हो गयी है। मात्र इतना ही जान पाया कि स्वयंप्रभा मेरे बाहु बन्धनों में नहीं है। स्वयंप्रभा के अभाव में मैं विकल हो उठा। मुझे सब कुछ नीरस और शून्य-सा प्रतीत होने लगा। उस समय नहीं सोच पाया कि वासना और आकांक्षा एक-सी अपरितृप्त रहने पर भी हमलोगों ने लाख-लाख वर्षों की परमायु व्यतीत की है। बिना स्वयंप्रभा के मेरे चारों ओर अन्धकार-सा छा गया। सर्वांग काँपने लगा। वाताहत कदली वृक्ष की भाँति मैं श्रीप्रभ विमान के कुट्टिम तल पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

श्रीप्रभ विमान के इतिहास में वह घटना निश्चय ही अभूतपूर्व थी। कारण पूर्व ही कह आया हूँ स्वर्ग में वेदना नहीं होती शोक और अनुसोचना नहीं होती। होता है केवल हर्ष। अतः स्वर्गोचित तो यही था कि मैं स्वयंप्रभा के बदले किसी अन्य देवांगना को अपने आश्लेष में ग्रहण कर लेता। किन्तु न जाने यह मेरा दुर्भाग्य था या सौभाग्य कि मैं मृत्युलोक की उस वेदना को भूल ही

नहीं पाया था। मैं तो उस वेदना को साथ लिए ही श्रीप्रभ विमान में उत्पन्न हुआ था। वह वेदना चिरकाल से मेरा अनुसरण करती आ रही है। आज भी कहाँ परित्याग कर पाया हूँ उस वेदना को। इस वेदना ने ही मुझे अनन्यता दी है तभी तो मैं अन्य देवताओं-सा न होकर सबसे पृथक हूँ। एतदर्थ जब मैं मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा अन्तःपुरिकाएँ सोच भी नहीं सकीं कि वे मेरे लिए क्या करें ? स्वर्ग से च्यव होने का समय उपस्थित होते ही वहाँ के देव-देवी सहसा अदृश्य हो जाते हैं। उनका कोई चिह्न ही वहाँ शेष नहीं रहता। किन्तु मेरा तो अभी च्यव का समय नहीं आया था। नहीं तो मैं भी स्वयंप्रभा की ही भाँति अदृश्य हो गया होता। मेरी अचेत देह वहाँ पड़ी नहीं रहती। वे सोचने लगीं मेरी अचेत देह का वे क्या करें ? कैसे वे मुझे होश में लाएँ ? अन्ततः अवधिज्ञान से मृत्युलोक की बात स्मरण कर वे मेरे मुख पर सुर-सरिता का शीतल जल छिड़कने लगीं। मेरी चेतना लौटी। ज्ञान लौटने पर मैं कुट्टिम-तल से उठ बैठा। किन्तु स्वयंप्रभा को अपने पास न देखकर स्वयंप्रभा, तुम कहाँ हो ?—कहता हुआ रो पड़ा। मेरे नेत्रों से निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। बेचारी अन्तःपुरिकाओं ने तो इसके पूर्व स्वर्ग में अश्रु भी नहीं देखे थे। अतः उन अश्रुओं को मुक्तामाला से स्खलित मुक्ताओं की भाँति वे अपने हाथों में ग्रहण करने लगीं।

स्वयंप्रभा के अभाव ने मुझे पूर्णतः उन्मादी बना दिया। तभी तो मैं कौन हूँ, कहाँ अवस्थित हूँ एकबारगी ही भूल गया। देवताओं का सहजात सामान्य अवधिज्ञान का प्रयोग करते ही मैं जान जाता कि स्वयंप्रभा अभी कहाँ है और कैसे अवस्थित है। किन्तु उन्मादी बना मैं ऐसा न कर श्रीप्रभ विमान के अन्तःपुर के प्रत्येक कक्ष में, उद्यान में, नदी तट पर, पर्वत कन्दराओं में उसे खोजता-फिरता रहा। सहसा ख्याल आया कहीं कोई उसे अपहरण करके तो नहीं ले गया ? तभी स्मरण हो आयी उस दिन की बात जिस दिन हम अच्छोद सरोवर के तट पर बसन्तोत्सव मनाने गए थे।

तब था चैत्र मास। अच्छोद सरोवर में नवीन पुष्प प्रस्फुटित हुए थे। सरोवर के तटवर्त्ती वृक्ष तले जो कुसुम रेणु झर पड़ी थी उस पर कलहंस मिथुन विश्वस्त भाव से विचरण कर रहे थे। उनके पद-चिह्नों से बहुधा विदीर्ण वह रेणु पटल चित्र खचित बासन्ती दुकुल की भाँति वनस्थली रूपी अरण्य सुन्दरी की शोभा को शतगुणा वर्द्धित कर रहा था। आम्र की कोमल कलिकाएँ उत्सुक चित्त को और अधिक उत्सुक बना रही थीं। मदमत्त कामिनियों के मुख जल सिंचन से बकुल वृक्ष में फूल लग रहे थे। कालेयक कुसुम के कुट्टमल

पर मधुकरकुलों की कालिमा विस्तृत हो रही थीं। अविरल झरती हुई कुसुम-रेणु की उज्ज्वलता से धरती आच्छन्न थी। पुष्प मधुपान में मत्त भ्रमरियाँ लता के हिंडोलों में झूल रही थीं। उत्फुल्ल लवली के पल्लवों पर लीयमान कोकिल अपनी काकली से प्रेमिक हृदयों को स्पन्दित कर रही थी। मैं स्वयं-प्रभा के साथ उसी सरोवर तट पर आनन्द से विचरण कर रहा था और स्वर्ग ललनाओं का लीला-विलास देख रहा था। श्रीप्रभ विमान की मृगाक्षियाँ अपने-अपने कामुक पतियों के भ्रम से करूवक अशोक और वकुल वृक्ष को आलिंगन दे रहीं थीं, पद-प्रहार कर रही थीं और अपने मुख का आसव पान करा रही थीं। कोई हस्त उत्तोलित कर मालती लता से पुष्प चयन कर रही थीं। कलकण्ठी स्वयंप्रभा सहसा—'प्रिय देखो, देखो' कहती हुई पुष्पान्वित लवली लता के पास जा खड़ी हुई। लवलीलता पुष्पभार से क्षीणकटि स्तनभारालसा स्वयंप्रभा जैसी ही लग रहीं थी। दूसरे क्षण स्वयंप्रभा लवलीलता को छोड़कर आम्रलता के निकट पहुँच गयी। चतुर कामी पुरुष जिस प्रकार मन्द-मन्द आलिंगन करते हैं उसी प्रकार मलय पवन आम्रलता का आलिंगन कर रहा था। मैं भी बाहु प्रसारित कर स्वयंप्रभा को आलिंगन में लेने के लिए जैसे ही अग्रसर हुआ वह दौड़कर अदूरवर्ती एक कुंज की झाड़ में अदृश्य हो गयी।

मैं उसी ओर बढ़ रहा था कि मुझे एक आर्त्त स्वर 'रक्षा करो, रक्षा करो' सुनायी पड़ा। "क्या हुआ?"—कहता हुआ मैं द्रुतगति से वहाँ पहुँचा। देखा किरात वेषधारी एक नागकुमार ने स्वयंप्रभा को पकड़ रखा था। मैं वज्र उत्तोलित कर जैसे ही उसे मारने दौड़ा वह स्वयंप्रभा को छोड़कर भागा और अच्छोद-सरोवर में कूद पड़ा। मैं भी उसका अनुसरण करता हुआ अच्छोद सरोवर के जल में कूद गया। सरोवर के कण-कण का मैंने अनुसन्धान किया किन्तु उसे पकड़ नहीं सका। शायद वह सर्प बनकर रन्ध्रक पथ से नागलोक की ओर भाग गया था। मैं सोचने लगा—आज भी कहीं वही नागकुमार तो श्रीप्रभ विमान से स्वयंप्रभा को हरण कर नहीं ले गया? किन्तु यह कैसे सम्भव है? श्रीप्रभ विमान के सशस्त्र रक्षक सर्वदा इसी की रक्षा करते रहते हैं।

मन के आवेग के वशीभूत होकर ही मैं वह दृश्य फिर से देख रहा था। अब मुझे श्रीप्रभ विमान से विच्छुरित नीलमणि की प्रभा किरात वेषधारी नागकुमार और वैदुर्यमणि का किरण स्वयंप्रभा-सा प्रतीत हो रहा था। "अरे ओ दुष्ट, श्रीप्रभ विमान से तू स्वयंप्रभा को हरण कर ले जा रहा है?" कहता

हुआ वज्र उत्तोलित कर मैं उसी दिशा में दौड़ा। किन्तु, दूसरे ही क्षण मुझे अपनी भूल महसूस हो गयी। मैं सोच में डूब गया : सोचा—कहीं मुझ पर किसी कारण से वह रूष्ट तो नहीं हो गयी है ? ऐसा ही तो हुआ था उस दिन जबकि मैंने उसकी सखी चित्रलेखा के प्रति पक्षपात दिखाया था। वह रूष्ट होकर न जाने कहाँ जा छिपी थी। स्वयंप्रभा के क्रोध से रक्त सजल नेत्र मेरे नेत्रों के सम्मुख उभर आए। किन्तु तब वह अधिक देर तक क्रोधावेश में भी मेरे बिना नहीं रह सकी थी। अतः मैं नवीन उत्साह से उसे खोजने लगा। पारिजात वनों की कुंजों में उसे खोजते हुए एक स्थान पर भू-गर्भ से उद्गत रक्तवर्ण नवकन्दली कुसुम देखा। उस पर शिशिर पात जनित जल विन्दु शोभित हो रहे थे। वह था मेरी स्वयंप्रभा के क्रोधारक्त उन्हीं सजल नयनों सा। तो क्या वह शोभनांगी इस पथ से गयी है ? हाय ! देवताओं के चरण भी तो भूमि का स्पर्श नहीं करते। नहीं तो पारिजात वन की शिशिर सिक्त भूमि पर उस गुरुनितम्बवती के चरण चिह्न अवश्य ही अंकित होते। खैर, नहीं सही वह। किन्तु इसबार मुझे उसका सन्धान मिल गया है। वही जो वहाँ उसका स्तनावरण वस्त्र पड़ा है। क्रोध में उन्मत्त बनी जब वह जाने लगी होगी तो उसका वह स्तनावरण वस्त्र खिसक कर वहाँ गिर पड़ा होगा। उस नतनाभि सुन्दरी के अश्रुविन्दु अधरों पर गिरकर अधर राग से लाल हो गए होंगे। इसीलिए तो इस स्तनांशुक पर भी लाल विन्दु चिह्न अंकित हो गया है। मैं उस स्तनांशुक को उठाने गया। तभी मेरा भ्रम टूटा। वह स्तनांशुक वस्त्र नहीं इन्द्रगोपतृण सहित अचिरोद्गत दुर्वाराजि थी। मैं पुनः विषाद सागर में डूब गया। अब मैं कैसे स्वयंप्रभा का सन्धान प्राप्त करूँ ? तभी समीप ही एक टीले पर नीलकण्ठ मयूर को कण्ठ उत्तोलित कर केका ध्वनि करते देखा। सोचा—शायद इसने स्वयंप्रभा को देखा होगा। अतः उसके समीप जाकर बोला—"हे मयूर राज, मैं तुम्हारा अभिवादन करता हूँ। क्या तुमने इस पारिजात वन में भ्रमण करते समय मेरी हृदय हारिणी को देखा है ? उसको पहचानना जरा भी कठिन नहीं है। हे नीलकण्ठ, मेरे हृदय की उत्कंठा रूप वह स्वयंप्रभा तुम्हारी ही तरह दीर्घ अपांगयुक्त थी। यदि उस मरालगामिनी को तुमने एक बार भी देखा होगा तो तुम स्वयं ही बता सकोगे कि वह मेरी ही प्रिया थी। उसे देखने पर कुछ देखने को शेष ही नहीं रहता।"

किन्तु नीलकंठ ने मेरी बात का कोई जबाब ही नहीं दिया। अपने पंखों को फैलाकर आनन्द में नृत्य करने लगा। मुझे मन ही मन बहुत क्रोध आया।

पर उसी समय मैं उसके आनन्द का कारण समझ गया। मेरी प्रियतमा के घन चारु केश-कलाप मृदु मन्द पवन में जब इधर-उधर लहराते तो कितने शोभित होते थे। उस शोभा की आगार स्वयंप्रभा आज नहीं है अतः उसने प्रतिपक्ष को पराजित कर दिया है समझकर ही शायद आनन्दित हो रहा है। किन्तु रतिश्रान्ता मेरी प्रिया की कवरी के कुसुम मण्डित केश भार जब इधर-उधर लहराकर जिस सौन्दर्य की सृष्टि करते थे उस सौन्दर्य को क्या यह मयूर प्राप्त कर सकता है? नहीं, कभी नहीं। खैर, छोड़ो। अब इससे कुछ नहीं पूछूँगा। जो पर दुःख में आनन्दित होता है उससे मुझे कुछ भी नहीं पूछना है।

तभी कोकिला की कुहुक कानों में पड़ी। सोचने लगा इसी से क्यों न पूछूँ। अतः करबद्ध होकर उसके समीप पहुँचा और बोला—"ओ मधुर-भाषिणी, ओ परभृते, क्या तुमने मेरी प्रिया को पारिजात वन में एकाकी भ्रमण करते हुए देखा है? हे कोकिला, कामीगण तुम्हें मदन की दूती कहते हैं। अभिमान भंग में तुम्हारे जैसा दूसरा कोई नहीं है। इसलिए या तो तुम मेरी उस मानिनी प्रिया को यहाँ ले आओ या मुझे उसके पास ले चलो। क्या? क्या बोल रही हो? तो समझ गया। यदि मैं उस पर इतना अनुरक्त हूँ तो वह मुझे छोड़कर क्यों चली गयी? तब सुनो, पति पर पत्नी का असीम कर्तृत्व होता है। वह एक आध त्रुटि-विच्युति भी सहन नहीं कर पाती। तुम तो सब कुछ जानती ही हो।" किन्तु यह क्या? मेरी बात का कोई भी प्रत्युत्तर न देकर वह अपरिपक्व जम्बूफल खाने में प्रवृत्त हो गयी। धिक्कार है! किन्तु नहीं, इस पर क्रोध नहीं करूँगा, कारण मेरी प्रिया की तरह ही तो यह मधुर भाषिणी है। अतः इस पर क्रोध नहीं कर सकूँगा।

दुःख से बोझिल हृदय लिए घूमता हुआ मैं एक सरोवर के तट पर पहुँचा। उस सरोवर के स्वच्छ सलिल में राजहंस विचरण कर रहे थे। मैंने उनसे अपनी प्रिया के संवाद पूछे किन्तु वे मेरी बात का कोई उत्तर न देकर इधर-उधर देखने लगे। लगा वे मुझसे कुछ छिपा रहे थे। अतः विनीत स्वर को और अधिक विनीत करता हुआ मैं बोला—"हे गति लालस हंस, जघन भार से मन्थर गति वाली मेरी प्रिया को यदि तुमने नहीं देखा तो मन्थर-गमना मतवाली यह गमनभंगी तुम्हें कहाँ मिली?" किन्तु मेरी बात का जवाब दिए बिना ही वे कहाँ उड़ गए। तब मैं चक्रवाक के पास जा उपस्थित हुआ। चक्रवाक की पत्नी भी उस समय वहीं थी। मैं चक्रवाक से बोला—"हे गोरोचन

सदृश पिंगल वर्ण चक्रवाक, बसन्त वासर में मैं अपनी प्रिया के साथ क्रीड़ा कर रहा था तभी न जाने वह कहाँ अदृश्य हो गयी ? उस नारी कुल धन्या मेरी प्रियतमा को क्या तुमने देखा है ?".... ...पर चक्रवाक ने भी मेरी बात का कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। तब मैंने कहा—"तुम्हारी प्रिया जब सरोवर के पद्म पत्र से शरीर ढक लेती है तब तुम कितना रोते हो ? स्नेह के कारण तिल मात्र भी प्रिया का विरह तुम नहीं सह सकते तब तुम मेरी इस दयनीय स्थिति पर अनुकम्पा क्यों नहीं दिखाते ? किन्तु नहीं, इसके लिए मैं तुम्हें दोष नहीं दूँगा। यह समस्त मेरे विपरीत भाग्य का फल है।" उसी समय कमल दल में आबद्ध एक भ्रमर का मधुर गुंजन मेरे कानों में प्रवाहित हुआ। मैं जब स्वयं-प्रभा के अधरों का पान करता था तब वह इसी प्रकार मुख से सित्कार ध्वनि करती हुई मुझे आकुल कर देती थी। फिर क्यों न मैं इसी से पूछूँ ? "हे मधुकर, मेरी उस खंजन से मदभरे नेत्रों वाली प्रिया की तुम्हें कुछ खबर है ?" क्या कहा ? तुमने उसे नहीं देखा ? ठीक ही कहते हो, यदि उस वरांगी को तुमने देखा होता, यदि तुमने उसके मुख सौरभ के एक भग्नांश का भी पान किया होता तो तुम उस कमल पर जाकर नहीं बैठते। अच्छा तो वह जो मातंग वहाँ मातंगिनी सहित खड़ा है उससे पूछूँ। "हे गजराज, मदमत्त युवतियों के मध्य जो पूर्ण चन्द्र सदृश हैं, यूथिका कुसुमदाम से जिसके केश पाश शोभित हैं उस स्थिर यौवना मेरी प्रिय दर्शना प्रिया को तुमने कहीं देखा है ?" गजराज ने भी कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। अपनी सँड के अग्रभाग से शल्लकी की पल्लवयुक्त शाखा तोड़कर वह अपनी प्रियतमा को खिलाने लगा। तो अब मैं कहाँ जाऊँ ? अरे, मैं तो उसी गिरिश्रेणी के निकट आ पहुँचा हूँ जिसकी कन्दराएँ सर्वदा सौरभपूर्ण रहती हैं। ये सुरभित कन्दराएँ स्वर्ग ललनाओं का बहुत प्रिय है। देखूँ, गिरिराज से पूछूं। "हे गिरिराज, तुमने उस पीन स्तनी सन्नताक्षी नवयौवन शोभिनी स्वयंप्रभा को देखा है ?" कोई जबाब नहीं *मिला ? शायद* सुन नहीं सका। और सन्निकट जाकर पूछूँ। "हे स्फटिक शिलातल निर्मल निर्झरशाली, हे कुसुमालंकृतशीर्ष, हे किन्नर संगीत मनोहर महिधर, मेरी प्रिया तुम्हारी किसी गिरिकन्दरा में तो नहीं छिपी है ?" नहीं छिपी है...."क्या कहा ? नहीं छिपी है। किन्तु, नहीं-नहीं, यह तो गिरि कन्दराओं से प्रतिध्वनित मेरा ही कण्ठस्वर है। तो गिरिराज ने भी मेरी बात का जवाब नहीं दिया।

घूमते-घूमते मैं क्लान्त हो गया। अतः गिरि निर्झरिणी के तट पर जा बैठा। निर्झरिणी के जल कणों को लिए शीतल समीर देवदारू के पत्रों को

कम्पित करती हुई प्रवाहित हो रही थी। उस उद्दाम निर्झरिणी को ओर अनवरत देखते हुए मेरे मन में नाना भावों का उदय होने लगा। सहसा मन में आया मेरी स्वयंप्रभा ने रोषावेश में कहीं इस निर्झरिणी का तो रूप धारण नहीं कर लिया है? इसकी उद्घत तरंगें तो उसी के भ्रू कम्पों-सी है। जल के ऊपर चहचहाहट कर उड़ते हुए विहंग गण प्रिया की रूनझुन करती शिञ्जाशालिनी मेखला-सी है और वे फेन पुंज जो इधर-उधर हो रहे हैं मानों उसके श्वेत वस्त्र हैं जो उस क्रोध कम्पितांगी के नितम्बों से खिसक रहे हैं जिन्हें वह बार-बार खींच कर पकड़ रही है। उपल खण्डों से प्रहत जो स्रोत बहा जा रहा है उससे लगता है जैसे वह क्रोध से बड़बड़ाती हुई, पद-पद पर ठोकर खाती हुई भागी जा रही है। निश्चय ही उस असहिष्णु स्वयंप्रभा ने इस नदीका रूप धारण कर लिया है। तब मैंगललग्निकृतवास होकर उससे याचना करने लगा—"अयि क्षुभिते करुण कूजित विहंगमें, अलिकुल झंकारिणी, सुरसरि त्तीरसमुतसुकहरिणी, सुर निर्झरिणी रूपिणी प्रियतमें स्वयंप्रभा, मान का परित्याग करो। मैं तो तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानता। फिर तुम किस अपराध के कारण मेरा त्याग कर प्रवाहित हो रही हो?"

क्या अनर्गल प्रलाप कर रहा हूँ मैं! यह निर्झरिणी स्वयंप्रभा नहीं है। यदि होती तो मुझे इस दयनीय स्थिति में देखकर प्रत्युत्तर दिए बिना नहीं रहती।

सहसा मेरी दृष्टि एक हरिण पर पड़ी। वह अदूरस्थित हरिणी की ओर एकटक देख रहा था। सोचने लगा—इससे पूछ कर देखूँ। अतः बोला—"भाई मृग, क्या तुमने मेरी प्रिया को देखा है? वह साधारण रमणियों-सी नहीं है, जघन भार से मन्थर गामिनी पीनोन्नत पयोधरा, क्षीण कटि, अगलित यौवना हंस-सी अलसगति, तुम्हारी प्रिया की ही तरह आयत नेत्रों वाली है।" किन्तु हाय, उस हरिण ने तो मेरी ओर मुड़कर देखा तक नहीं। सच ही तो है—जब विधाता वाम होता है तो सभी उससे विमुख हो जाते हैं।

उस निर्झरिणी के तट प्रान्त का परित्याग कर मैंने पर्वत शिखर पर आरोहण करना आरम्भ कर दिया। लगा स्वयंप्रभा के बिना अब मैं एक मुहूर्त्त भी जीवित नहीं रह सकूँगा। अतः मन ही मन स्थिर किया पर्वत शिखर से कूद कर आत्महत्या कर लूँ। स्वयंप्रभा के विरह में मैं इतना व्याकुल हो गया था कि स्वयं की स्थिति ही भूल गया। देव शरीर कभी इस प्रकार नष्ट नहीं किया जा सकता। किन्तु उस समय मैं बेभान जो था। मैं ज्यों ही

पर्वत शिखर से कूदने को तत्पर हुआ तभी सुदूर श्रुत संगीत-सी किसी का गम्भीर कण्ठ स्वर मेरे कानों में पड़ा। "हे महासत्व, आप यह क्या कर रहे हैं? आप स्त्री के लिए जितने व्याकुल हो गए हैं धीर पुरुष तो उतने व्याकुल मृत्यु से भी नहीं होते।"

मैंने ऊपर की ओर देखा—कोई दिखाई नहीं पड़ा। किन्तु वह कण्ठस्वर मेरा परिचित था। वह कण्ठस्वर था स्वयंबुद्ध का। गन्ध समृद्धि नगर में जिस कण्ठस्वर ने मुझे उद्‌बुद्ध किया था वही कण्ठस्वर ईशान कल्प के श्रीप्रभ विमान में कहाँ से प्रवाहित होता हुआ आया? स्वयंबुद्ध बुद्धिसागर मेरा परम मित्र था। उसके उपदेशानुसार चला तभी तो इस श्रीप्रभ विमान का आधिपत्य मुझे प्राप्त हुआ। किन्तु, स्वयंप्रभा से हीन होकर यह आधिपत्य, यह समृद्धि मुझे अकिंचित्कर लग रहा है। अतः मैं चित्कार उठा—"स्वयं बुद्ध, तुम कहाँ हो?"

तत्काल सूक्ष्म श्वेत वस्त्र परिहित एक सौम्यवदन पुरुष को मैंने अपने सम्मुख खड़ा पाया। उसके ओष्ठ हिल रहे थे। आवाज आयी, "राजन्, मैं ही हूँ स्वयंबुद्ध। वर्त्तमान में ईशानेन्द्र का सामानिक देवता होकर मैंने ईशान कल्प में दृढ़धर्मा रूप में जन्म ग्रहण किया है। अवधिज्ञान से आपकी स्थिति ज्ञातकर आपको तत्वोपदेश देने आया हूँ। आयुष्य क्षीण हो जाने के कारण स्वयंप्रभा स्वर्ग से च्युत होकर मृत्यु लोक में लौट गयी है। आप उसके लिए वृथा शोकाकुल मत बनिए।"

मैं चिल्लाकर बोल उठा—"यह तुम क्या कह रहे हो? स्वयंप्रभा के लिए मैं शोक नहीं करूँ? तुम क्या जानो समस्त संसार में मेरे लिए एकमात्र वह मृगाक्षी ही सार भूत है, शेष सब असार है।"

स्वयंबुद्ध कुछ क्षण चुपचाप खड़ा रहा। कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। तब मैं नतजानु होकर उसे बोलने लगा—"स्वयंबुद्ध, जिस प्रकार तुमने एक दिन मेरा परित्राण किया था आज भी उसी प्रकार मेरा परित्राण करो। मेरी स्वयंप्रभा जहाँ जिस स्थिति में है मुझे वहीं उससे मिला दो। मैं चिरकाल के लिए तुम्हारा दास बनकर रहूँगा।"

स्वयंबुद्ध बोला—"महाराज, आप इस भाँति आत्म विस्मृत क्यों हो गए हैं? आप इस समय मृत्युलोक के मानव नहीं स्वर्ग के देव हैं। सामान्य अवधि-ज्ञान का प्रयोग करते ही आप स्वयं ही जान जाते कि स्वयंप्रभा कहाँ किस रूप में उत्पन्न हुई है। किन्तु ऐसा न कर इतरजनों की भाँति आप स्वयंप्रभा

को इधर-उधर खोजते फिर रहे हैं। इस अविधज्ञान से ही सब कुछ ज्ञात कर मैं आपको आत्मस्थ करने के लिए यहाँ आया हूँ।"

"बन्धु, तुम ठीक ही कह रहे हो। मैं आत्म विस्मृत हो गया हूँ। सत्य तो यह है कि स्वयंप्रभा के अभाव में मैं निःसत्व हो गया हूँ। तुम मुझे उससे मिला दो। मैं और कुछ नहीं चाहता।"

"तब ऐसा ही होगा राजन्। भवितव्यता को कब कौन अतिक्रम कर सका है? मैं आपको शक्ति देता हूँ, आप अवधिज्ञान का प्रयोग करिए। सब कुछ आप स्व नेत्रों से ही देख पाएँगे।"

[क्रमशः

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

कुंजर जिस प्रकार निकुंज में प्रवेश करता है उसी भाँति एकबार प्रभु सन्ध्या के समय बाहुबली के राज्य में तक्षशिला के निकट आए और नगर के बाहर एक उपवन में कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित हो गए। उद्यानपाल ने यह संवाद बाहुबली को दिया। उसी क्षण बाहुबली ने नगर रक्षकों को आदेश दिया हाट-बाट आदि को सजाकर नगर को सुसज्जित करो। इस आज्ञा के प्राप्त होते ही नगर के स्थान-स्थान पर कदली वृक्ष की तोरण माला तैयार की गयी। जिससे लटकते हुए केले पथ चारियों के मुकुटों को स्पर्श करने लगे। भगवान के दर्शनों को मानो देवतागण आए हों इस प्रकार प्रत्येक राज पथ पर, रत्न-पात्रों से अलंकृत मंच निर्मित किए गए। हवा में उड़ती हुई उच्च पताकाओं की श्रेणी से वह नगर ऐसा लगता था मानों वह सहस्र हस्त बनकर नृत्य कर रहा है। चारों ओर नवीन कुंकुम जल का छिड़काव कर देने के कारण ऐसा लगा जैसे समस्त नगर की मिट्टी ने मंगल अंगराग लगाया है। भगवान के दर्शन करने की उत्कण्ठा रूप चन्द्र दर्शन से समस्त नगर कुमुद खण्ड की भाँति विकसित हो उठा। अर्थात् किसी को भी उस रात नींद नहीं आयी। सुबह ही प्रभु दर्शन से निज आत्मा और जनगण को पवित्र करूँगा ऐसी इच्छा वाले बाहुबली की वह रात्रि समाप्त होकर सबेरा होते ही प्रतिमास्थिति समाप्त कर पवन की भाँति प्रभु अन्यत्र प्रस्थान कर गए।

जैसे ही प्रभात हुआ बाहुबली उपवन की ओर जाने के लिए प्रस्तुत हुए। उसी समय सूर्य की भाँति बड़े-बड़े मुकुटधारी-मण्डलेश्वर और समाधान के मन्दिर तुल्य साक्षात् शरीर धारी अर्थशास्त्र के शुक्रादि समान अनेक मन्त्रीगण वहाँ बाहुबली की सेवा में उपस्थित थे। गुप्तपक्ष गरूड़ तुल्य जगत को उल्लंघन करनेवाले वेगधारी लक्ष-लक्ष अश्व श्रेणियों से वह स्थान सुशोभित हुआ। दीर्घकाय बहुत से ऐसे हाथी भी वहाँ उपस्थित थे जिनके मस्तक से मदजल प्रवाहित हो रहा था। उन्हें देखकर लगता था मानों पृथ्वी की धूल को शान्त करने के लिए प्रस्रवणयुक्त महागिरि वहाँ उपस्थित हुआ है। पाताल कन्या-सी सुन्दर असूर्यम्पश्या बसन्त श्री आदि अन्तःपुर की ललनाएँ प्रस्तुत होकर उनके चारों ओर खड़ी थीं। उनके दोनों ओर चामरधारिणी रमणियाँ खड़ी

थीं जिससे वे राजहंस युक्त गंगा यमुना द्वारा सेवित प्रयाग से प्रतिभासित हो रहे थे। उनके मस्तक पर श्वेत छत्र था। इससे वे ऐसे शोभित हो रहे थे जैसे अर्द्धरात्रि में चन्द्रमा के द्वारा पर्वत सुशोभित होते हैं। देवनन्दी नामक छड़ीदार आगे चलकर जिस प्रकार इन्द्र को पथ दिखलाते हैं उसी प्रकार सुवर्ण छड़ी हाथ में लिए प्रतिहार उनके आगे-आगे चलते हुए पथ दिखा रहे थे। रत्नाभरण भूषित श्रीदेवी के पुत्र तुल्य श्रेष्ठीगण अश्व पर आरोहण कर उनका अनुगमन करने के लिए प्रस्तुत हो रहे थे। और पर्वत शिला पर जिस प्रकार तरुण सिंह बैठा रहता है उसी प्रकार भद्र जातीय श्रेष्ठ हस्ती पर इन्द्र-तुल्य राजा बाहुबली उपवेशित हुए। पर्वत माला जिस प्रकार शिखर से शोभित होती है उसी प्रकार तरंगित कान्तिमय रत्न जड़ित मुकुट से वे शोभित हो रहे थे। बाहुबली ने कानों में मोती के कुण्डल धारण किए थे। उन्हें देखकर लगता मानों उनकी मुख शोभा द्वारा पराजित दोनों चन्द्र उनकी सेवा में उपस्थित हुए हैं। लक्ष्मी के मन्दिर तुल्य हृदय पर उन्होंने स्थूल मुक्तामणिमय हार पहन रखे थे। वे हार मन्दिर की अर्गला से लगते थे। भुजाओं में उन्होंने दो उत्तम सुवर्ण बाजूबन्द धारण कर रखे थे। देखकर लगता था बाहुरूपी वृक्ष को बाजूबन्द रूपी लता ने वेष्टित कर और दृढ़ बना दिया है। उनकी कलाई में मुक्तामणि के कड़े थे। वे देखने में लावण्यरूपी सरिता के फेन पुंज से लगते थे। निज कान्ति से आकाश आलोकितकारी दो अँगूठियाँ उन्होंने अपनी ऊँगलियों में पहन रखी थीं। वे अंगूठियाँ उसी प्रकार सुशोभित हो रही थीं जिस प्रकार सर्प के मस्तक पर दो वृहद् मणियाँ शोभित होती हैं।

उन्होंने शरीर पर महीन श्वेत वस्त्र धारण कर रखे थे। किन्तु शरीर में किए हुए चन्दन लेप के कारण यह रहस्य कोई नहीं जान सका। पूर्णिमा का चन्द्र जिस प्रकार चाँदनी को धारण करता है वैसा ही गंगा तरंग से स्पर्द्धा लेने वाला सुन्दर उत्तरीय उन्होंने धारण कर रखा था। निकटस्थ विभिन्न प्रकार की धातुमय भूमि से जिस प्रकार पर्वत सुशोभित होता है उसी प्रकार विभिन्न रंग के सुन्दर पहने हुए वस्त्रों में वे सुशोभित हो रहे थे। लक्ष्मी को आकर्षित करने के लिए लीलायित शस्त्र रूप बज्र वे महाबाहु अपने हाथों में बार-बार घुमा रहे थे। इस भाँति राजा बाहुबली उत्सव सहित प्रभु के पावन चरणों से पवित्र उस उपवन के निकट पहुँचे।

आकाश से जिस प्रकार गरूड़ उतरता है उसी प्रकार वे हाथी से उतरे और छत्रादि राजचिन्ह का परित्याग कर उसी उपवन में प्रवेश किया। वहाँ

उन्होंने चन्द्र रहित आकाश-सा और अमृत रहित सुधा कुण्ड-सा प्रभुहीन उद्यान को देखा। प्रभु दर्शन के उत्कट अभिलाषी बाहुबली ने उद्यान पालक को पूछा—"दृष्टि को आनन्द प्रदानकारी प्रभु कहाँ हैं?" उसने प्रत्युत्तर दिया—"वे रात्रि की भाँति ही अन्यत्र चले गए। जैसे ही मुझे यह बात मालूम हुई मैं आपको सूचना देने जा रहा था कि आप स्वयं ही आ गए।"

यह सुनकर तक्षशिला के राजा बाहुबली चिबुक पर हाथ रखकर अश्रुपूर्ण नयनों एवं दुःखार्त्त हृदय से विचारने लगे—हाय, आज सपरिवार प्रभु पूजा करने की जो इच्छा थी वह ऊसर भूमि में बीज वपन की तरह व्यर्थ हो गयी। जन-साधारण पर अनुग्रह करने की इच्छा से मैंने यहाँ आने में विलम्ब किया उसके लिए मुझे धिक्कार है! प्रभु को नहीं देखने के कारण मेरे लिए यह प्रभात भी अप्रभात है, सूर्य भी असूर्य है, नेत्र भी अनेत्र है। हाय, त्रिभुवन पति रात्रि में यहाँ प्रतिमा धारण कर अवस्थित थे और मैं निर्लज्ज बाहुबली स्वप्रासाद में आराम से सो रहा था।

इस प्रकार बाहुबली को चिन्तित देखकर उनके शोक रूपी शल्य को निःशल्य करने के लिए उनके मुख्य मन्त्री मधुर वाणी से बोले—"हे देव, आप क्यों चिन्ता कर रहे हैं कि यहाँ आकर भी मैं प्रभु को देख नहीं सका कारण वे प्रभु तो सर्वदा आपके हृदय में प्रतिष्ठित रहते हैं और यहाँ उनके चरणों के वज्र अंकुश, कमल, ध्वज और मीन के चिह्न देखकर सोचिए आप उन्हें भाव दृष्टि से देख पा रहे हैं।"

मुख्य मन्त्री की बात सुनकर अन्तःपुर और परिवार सहित सुनन्दा पुत्र बाहुबली ने उन चरण चिह्नों की वन्दना की। इन चरण चिह्न को कोई उल्लंघन न करे इसलिए उन चरण चिह्नों पर एक रत्नमय धर्म चक्र स्थापित किया। आठ योजन दीर्घ, चार योजन उच्च और एक हजार अरों से युक्त वह धर्मचक्र इस भाँति सुशोभित हो रहा था मानों वह पूर्ण सूर्यबिम्ब है। देवताओं के लिए भी जिसका निर्माण करना कठिन था ऐसे धर्मचक्र को बाहुबली ने प्रभु के अतिशय से निर्मित होते देखा। समस्त स्थानों से लाए गए पुष्पों से बाहुबली ने उस धर्मचक्र की पूजा की। इससे मन में हुआ जैसे वहाँ फूलों का पर्वत है। नन्दीश्वर द्वीप में इन्द्र जिस प्रकार अष्टान्हिका महोत्सव करते हैं इस प्रकार महोत्सव किया। फिर धर्मचक्र की पूजा और धर्मचक्र की रक्षा के लिए राजपुरुषों को सदा वहाँ रहने का आदेश देकर पुनः धर्मचक्र को वन्दना की और नगर की ओर लौट गए।

इस प्रकार स्वतन्त्रतापूर्वक अस्खलित गति से प्रव्रजनकारी नाना प्रकार की तपस्या में निष्ठावान विभिन्न प्रकार के अभिग्रहशील मौन व्रतावलम्बी यवनादि म्लेच्छ देश के निवासी अनार्यों को दर्शन मात्र से भद्र बनाने में समर्थ उपसर्ग और परिषह सहन करने में अव्याकुल प्रभु ने एक हजार वर्ष एक दिन की भाँति व्यतीत किया।

क्रमशः प्रव्रजन करते-करते प्रभु महानगरी अयोध्या के पुरिमताल नामक शाखा नगर में आये। उसके उत्तर की ओर स्थित द्वितीय नन्दन वन के समान शकटमुख नामक उद्यान में प्रभु ने प्रवेश किया। अष्टम तप कर प्रतिमाधारी प्रभु ने अप्रमत्त नामक सप्तम गुणस्थान में आरोहण किया। फिर अपूर्वकरण नामक गुणस्थान में आरूढ़ होकर सविचार पृथकत्व वितर्क नामक शुक्ल ध्यान की प्रथम श्रेणी प्राप्त की। तत्पश्चात् अनिवृत्ति नामक नवम् और सूक्ष्म संपराय नामक दशम गुण स्थान से होते हुए क्षणमात्र में क्षीणकषाय अवस्था को प्राप्त किया। फिर ध्यान द्वारा पल भर में चूर्णीकृत लोभ नष्ट कर रीठे के जल की तरह उपशान्त कषायी बने। इसके बाद ऐक्यश्रुत अविचार नामक शुक्ल ध्यान की द्वितीय श्रेणी पाकर वे अन्तिम क्षण में क्षीणमोह नामक द्वादस गुणस्थान पर चढ़ गए। इससे प्रभु के समस्त घाती कर्म क्षय हो गए। इस प्रकार व्रत ग्रहण करने के एक हजार वर्ष पश्चात् फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन चन्द्र जब उत्तराषाढ़ा नक्षत्र पर आया तब सुबह के समय प्रभु को त्रिकाल विषयक केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। इस ज्ञान से संसार के समस्त विषय करामलकवत जाने जाते हैं। उस समय सभी दिशाएँ प्रसन्न हो उठीं। सुखद पवन प्रवाहित होने लगा। यहाँ तक कि नारक प्राणियों ने भी एक क्षण के लिए सुख की अनुभूति की।

इसी समय सर्व इन्द्रों के आसन कम्पायमान होने लगे मानों वे स्वामी का केवल् ज्ञान प्राप्ति उत्सव करने के लिए उन्हें उद्‌बोधित कर रहे हों। समस्त देवलोकों में मधुर शब्दकारी घण्टे बजने लगे मानों वे अपने-अपने देवलोक के देवताओं को आह्वान करने का कार्य कर रहे हों। प्रभु चरणों में उपस्थित होने की इच्छावाले सौधर्मेन्द्र के चिन्तन करते ही ऐरावत नामक देव गज रूप धारण कर उसी मुहूर्त्त में वहाँ आया। उसने अपने शरीर को एक लाख योजन विस्तृत किया। वह ऐसा लग रहा था मानो प्रभु के दर्शनों का इच्छुक चलता हुआ मेरु पर्वत हो। अपने शरीर की हिमखण्ड-सी कान्ति से वह हस्ती चारों ओर चन्दन का लेप करता-सा प्रतीत हो रहा था। अपने गण्ड स्थल से झरते हुए मदजल से वह मानों स्वर्ग की कुट्टिम भूमि को कस्तूरी समूह से

अंकित कर रहा था। उसके दोनों कान पंखे की तरह हिल रहे थे मानों अपने गण्ड स्थल से प्रवाहित मद जल की सुगन्ध से अन्ध भ्रमर समूह को वे निवारित कर रहे थे। निज कुम्भ स्थल की दीप्ति से वह बाल सूर्य को पराजित कर रहा था। क्रमशः गोलाकार और पुष्ट सँड़ से वह नागराज का अनुकरण कर रहा था। उसके नेत्र और दाँत मधु-सी कान्ति सम्पन्न थे। उसका गला भेरी की तरह गोल और सुन्दर था। शरीर का मध्य भाग विशाल था। पीठ थी प्रत्यंचा पर आरोपित धनुष-सी वक्र। उदर था कृश।

वह चन्द्रमण्डल से नखमण्डल से सुशोभित था। उसका निःश्वास था दीर्घ और सुगन्धित। उसका करांगुल दीर्घ और दोलायमान था। उसके ओष्ठ गुह्य इन्द्रिय और पूँछ बहुत बड़ी थी। दोनों ओर स्थित सूर्य और चन्द्र से जिस प्रकार मेरु पर्वत अंकित होता है उसी प्रकार दोनों ओर दोलायमान दो घण्टों से वह अंकित था। उसके दोनों ओर की रस्सी देव वृक्ष के पुष्पों से गुँथी हुई थी। आठों दिग्-लक्ष्मियों की विभ्रम भूमि हो ऐसे स्वर्ण पत्रों से सज्जित उसके आठ ललाट और मुख शोभित हो रहे थे। वृहद् पर्वत के शिखर तुल्य दृढ़ कुछ-वक्र आठ-आठ दाँत उसके प्रत्येक मुख में शोभा पा रहे थे। उसके प्रत्येक दाँत पर मधुर और स्वच्छ जल की एक-एक पुष्करिणी थी। वे वर्षधर पर्वत के सरोवर से शोभित थे। प्रत्येक पुष्करिणी में आठ-आठ कमल थे। उन्हें देखकर लगता जैसे जल देवियाँ जल से मुँह निकाल रही हों। प्रत्येक कमल में आठ-आठ पंखुड़ीदल थे। वे सब क्रीड़ारत देवांगनाओं के विश्राम करने के लिए निर्मित द्वीप से लगते थे। पंखुड़ियों पर चार प्रकार के अभिनय युक्त पृथक-पृथक आठ नाटक अभिनीत हो रहे थे। प्रत्येक नाटक में कलनादी झरने से बत्तीस पात्र थे।

[क्रमशः

अर्द्ध कथानक

बनारसी दास

[पूर्वानुवृत्ति]

उसकी माँ ने उसे सान्त्वना देकर धैर्य रखने को कहा। वह बोली—"मेरे पास दो सौ रुपये जमा हैं। रुपये मैं उन्हें दे दूँगी ताकि कोई कुछ जान भी नहीं पाएगा। वे फिर आगरा जाएँ, नये तरीके से व्यापार शुरु करें।"

मेरी पत्नी ने उसके लिए माँ को धन्यवाद दिया। बोली—"रात को उनका मनोभाव जान लूँगी और तुमने जैसा कहा है उसी प्रकार काम करने को कहूँगी।"

उस रात मेरी पत्नी ने बड़ा प्रेम भरा व्यवहार किया और भविष्य में मेरा क्या करने का विचार है जानना चाहा कि मैं वहीं रहूँगा या जाऊँगा और जाऊँगा तो कहाँ ?

मैं बोला—"चलो अपने दोनों जौनपुर चलें।"

वह उससे सहमत नहीं हुई। बोली—"जौनपुर जाना अभी सम्भव नहीं है। वहाँ हजार झंझट होंगे। उससे तो अच्छा तुम पुनः आगरा चले जाओ ना। आगरा ही तुम्हारे लिए उपयुक्त स्थान है।"

मैं बोला—"रुपया नहीं होने से मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा ? बिना रुपए के कुछ नहीं किया जा सकता। पैसे बिना जीवन का कोई मूल्य ही नहीं है।"

तब उसने आश्वस्त भरे शब्दों में मुझे नवीन आशा दिलायी। बोली—"जो-जो जरुरी है तुम खरीद लो। जो लगेगा मैं दूँगी।"

ऐसा कहकर वह भीतर गयी और माँ के दिए हुए दो सौ रुपये मुझे दिए। सब कुछ दूसरों से छिपाकर रखा गया।

मुझे जैसे नवीन जीवन मिला। नवीन उत्साह से मैं बहुत से कार्य एक साथ करने लगा। बिक्री करने के लिए कपड़े खरीदे एवं उन्हें धुलवाने की व्यवस्था की। मुक्ता, माणिक, हीरे आदि खरीदने के लिए बाजार का निरीक्षण किया एवं एक साथ दो किताबें लिखने लगा। एक 'अजित नाथ के छन्द' एवं दूसरा 'नाम माला'। दोनों ही कविता में थीं।

मैं नये उत्साह से कार्य कर रहा था। अतः चार-चार कार्य एक साथ करने में भी असुविधा नहीं हुई।

दो किताबें लिखना और दो प्रकार के पण्य द्रव्य खरीदना। चार मास के भीतर ही मेरे सारे कार्य पूरे हो गए। नाममाला लिखना शेष हुआ। उसमें दो सौ पद थे। अजितनाथ के छन्द भी लिख लिए। जो कपड़े खरीदे थे वे धुलकर बिक्री के लिए तैयार हो गए और मैं एक अच्छी मुक्तामाला पाने में भी समर्थ हुआ।

फिर मैं अग्रहन शुक्ला द्वादसी को पुनः आगरा के लिए रवाना हुआ। यह मेरा दूसरी बार आगरा जाना था। माल कतला परवेज में ले गया कारण वहाँ मेरे श्वसुर की एक गद्दी थी। सोचा वहीं से काम शुरू करूँगा। मेरे खाने-पीने की व्यवस्था भी वहीं हुयी। रात को भी वहीं गद्दी में ही सोता। प्रतिदिन सबेरे उठकर मैं बाजार जाता और पण्य द्रव्य के ग्राहक पकड़ने की चेष्टा करता। किन्तु यह काम बड़ा कठिन हो गया कारण मेरे पास जो कपड़ा था वह निकृष्ट किस्म का था। अच्छे खरीददार की आशा में दौड़-धूप कर मैं केवल पसीने में ही नहाया अच्छा खरीददार नहीं मिला। हाय! भाग्य तब भी मुझ पर अप्रसन्न था।

पर उस मुक्तामाला को बेचकर मैंने अच्छा मुनाफा कमाया। उस एक ही सौदे में मुझे तीस रुपये मिले। जिस कीमत पर खरीदा था उसका तीन चतुर्थांश लाभ किया। मैंने वह चालीस रुपये में खरीदी थी और सत्तर रुपये में बेची। इससे मैं समझ पाया कि लाभ केवल रत्न और जवाहिरात में ही सम्भव है। चार महीने तक मैंने उस कपड़े को बेचने की कोशिश की किन्तु वह नहीं बिका। वह माल एक भारी पत्थर की तरह मेरी छाती पर पड़ा रहा।

यहाँ मेरे दो मित्र बने जो कि क्रमशः घनिष्ट अन्तरंग हो गए। एक था नरोत्तम दास, खोबरा गोत्र के बेनीदास का पौत्र और दूसरा था थानमल बदलिया। हम तीनों में परस्पर इतना स्नेह हो गया था कि तीनों एक साथ ही रहते।

एक दिन गाड़ी भाड़ा कर हम तीनों मन्दिर में पूजा करने गए। पूजा कर हम तीनों करवद्ध होकर बोले—"हे भगवन्, हमें धन दो। ऐसा होने पर हम पुनः आकर अच्छी तरह आपकी पूजा करेंगे।"

उस दिन से हमारी घनिष्टता और बढ़ गयी। हमारा तन-मन एक हो गया। दिन का प्रति घण्टा हम मधुर वार्तालाप में बिताने लगे।

उसी वर्ष के फाल्गुन मास में हमारे एक धनी मित्र ताराचन्द मोथिया ने एक विवाह में बाराती बनकर जाने का आमन्त्रण दिया। ताराचन्द नेमा का पुत्र था। बारात आगरे से बाहर जा रही थी। वर था बालाचन्द। नरोत्तम इनके साथ जा रहा था। अतः मुझे भी जाने को राजी कर लिया। साथ में कुछ रुपये लेना जरुरी था। दुर्दिन के लिए जो मोती रखे थे उन्हें बेच दिया। उससे बत्तीस रुपये मिले। उन्हीं रुपयों को लेकर यात्रा की।

जब लौटा तब मेरे हाथ में एक पैसा भी नहीं था। अतः जो दाम मिले उसी दामपर कपड़ा बेचना स्थिर किया। जो कुछ मिला उससे उधार चुकाया। इस प्रकार ऋण मुक्त तो हो गया लेकिन भिखारी बन गया।

मैं नरोत्तम के घर जाकर उससे मिला। उसने मेरा सत्कार किया और अपने साथ खिलाया। मैंने उससे कहा मैं तो दिवालिया हो गया हूँ। अब कहाँ जाऊँगा कोई ठीक नहीं। यह सुनकर उसने मुझे अपने ही घर पर रहने को कहा। कहने लगा—"तुम तो मेरे भाई की तरह हो। अतः जो कुछ मेरा है वह तुम्हारा भी है।" यह भी बोला कि वह जिससे प्रेम करता है उसके लिये उसका घर सदा खुला रहता है। मैं दुविधा में पड़ गया। बोला—"तुम्हारे घर के लोग विशेष कर तुम्हारी पत्नी यह नहीं भी पसन्द कर सकती है।" लेकिन उसने ऐसा कहकर मुझे निरूत्तर कर दिया कि—"तुम क्या सोचते हो कि मेरे घर पर कोई ऐसा है जो तुम्हें कटु वचन कह सकता है?"

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अनेकान्त ।। अक्टूबर-दिसम्बर १९८२

इस अंक में है 'राजस्थान के इतिहास में जैनों का योगदान' (डा० ज्योतिप्रसाद जैन), 'ब्रह्म जिनदास की तीन अन्य रचनाएँ' (अगरचन्द नाहटा), 'अपभ्रंश काव्यों में सामाजिक चित्रण' (डा० राजाराम जैन), 'जिला संग्रहालय खरगोन में संरक्षित जैन प्रतिमाएँ' (नरेश कुमार पाठक), 'मासल की जैन मूर्त्तियाँ' (प्रदीप शालिग्राम मेश्राम), 'परिणाम नित्य' (युवाचार्य महाप्रज्ञ), 'अज्ञानता' (बाबूलाल जैन), 'जैन साहित्य में कुरूवंश, कुरूजनपद एवं हस्तिनापुर' (डा० रमेशचन्द्र जैन), 'क्रान्तिकारी शीतल' (ऋषभ चरण जैन), 'विश्व शान्ति में भगवान महावीर के सिद्धान्तों की उपादेयता' (कु० पुखराज जैन)।

अमर भारती ।। जनवरी १९८३

उपाध्याय श्री अमर मुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में हैं 'बन्धन और मुक्ति' (डा० सागरमल जैन)।

कुशल निर्देश ।। जनवरी १९८३

इस अंक में है 'श्री सहजानन्दघन जी महाराज के मुमुक्षुओं को दिए पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'हाथे सो साथे' (गु० पं० धीरजलाल टो० शाह, अनु० भँवरलाल नाहटा), 'साहित्य क्षेत्र की जघन्य तस्कर वृत्ति' (गणेश ललवानी), 'पाप का मूल : परिग्रह' (गु० मनसुखलाल ताराचन्द मेहता, अनु० भँवरलाल नाहटा)।

जर्नल अव दि ओरियन्टल इन्स्टिट्यूट ।। जून १९८२

इस अंक में है 'Minor Jaina Deities' (Dr. U. P. Shah)।

जैन जर्नल ।। जनवरी १९८३

इस अंक में है 'Jainism in Ancient Bengal' (Paresh Chandra Dasgupta), 'Holy Image, Holy Truth' (Leona Smith Kremser), 'Post-Vedanga Pre-Siddhantic Indian Astronomy—Studies in Jaina Astronomy' (Sajjan Singh Lishk), 'Spiritual

Oblivion and Spiritual Awareness—A Confusion of Utopias' (Clare Rosenfield), 'A Torso of Parsvanatha in the Bhagalpur Museum (Bihar)' (Ajoy Kumar Sinha), 'Asta Dikpalas at Vimala Vasahi, Mt. Abu' (Maruti Nandan Prasad Tiwari & Kamal Giri) ।

श्रमण ।। जनवरी १९८३

इस अंक में है 'जैन एकता का प्रश्न' (डा० सागरमल जैन), 'जैन एकता सम्भव कैसे ?' (मुनि श्री रूपचन्द्र), 'जैन धर्म और युवावर्ग' (प्यारेलाल श्रीमाल), 'हुबली का शान्तिनाथ मन्दिर' (भूरचन्द जैन) ।

Vol. VI No. 10 : Titthayara : February 1983
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001